

९४. अर्थहीनाख्यानम्

सर्वकल्याणकेषूच्चै-श्चर्चितांस्त्रिदशादिभिः। नत्वा जिनेश्वरान्वक्ष्ये अर्थहीनकथानकम् ॥१॥
 विनीतविषये रम्ये पुरेऽयोध्याभिधानके। राजाऽभूद्वसुपालाख्यो वसुमत्यभिधा प्रिया ॥२॥
 तयोः पुत्रः समुत्पन्नो वसुमित्रो विचक्षणः। तस्योपाध्यायको जातो गर्गनामा गुणोज्ज्वलः ॥३॥
 अवन्तिविषये पुर्यामुज्जयिन्यां तथाभवत्। वीरदत्तो महान्राजा वीरदत्ता सुवल्लभा ॥४॥
 अयं श्रीवीरदत्ताख्यो वसुपालस्य भूभुजः। मानभङ्गं करोत्युच्चैस्ततः स वसुपालकः ॥५॥
 उज्जयिन्यां समागत्य तस्योपरि महाक्रुधा। गतेषु दिवसेषूच्चैर्वसुमत्यादिकान्प्रति ॥६॥
 पुत्रोऽध्यापयितव्योसौ वसुमित्रोतिसादरम्। शालिभक्तं मसिस्पृक्तं सर्पिर्युक्तं दिनं प्रति ॥७॥

९४. अर्थहीन वाक्य की कथा

गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ऐसे पाँच कल्याणों में स्वर्ग के देवों ने आकर जिनकी बड़ी भक्ति से पूजा की, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर अर्थहीन अर्थात् उल्टा अर्थ करने के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१॥

वसुपाल अयोध्या के राजा थे। उनकी रानी का नाम वसुमती था। इनके वसुमित्र नाम का एक बुद्धिमान् पुत्र था। वसुपाल ने अपने पुत्र के लिखने-पढ़ने का भार एक गर्ग नाम के विद्वान् पंडित को सौंपकर उज्जैन के राजा वीरदत्त पर चढ़ाई कर दी। कारण वीरदत्त हर समय वसुपाल का मानभंग किया करता था और उनकी प्रजा को भी कष्ट दिया करता था। वसुपाल उज्जैन आकर कुछ दिनों तक शहर का घेरा डाले रहे। इस समय उन्होंने अपनी राज्य-व्यवस्था के सम्बन्ध का एक पत्र अयोध्या भेजा। उसी में अपने पुत्र के बाबत उन्होंने लिखा- ॥२-६॥

“वसुमित्र के पढ़ाने-लिखाने का प्रबन्ध अच्छा करना, कोई त्रुटि न करना और उसके पढ़ाने वाले पंडित जी को खाने-पीने की कोई तकलीफ न हो-उन्हें घी, चावल, दूध-भात वगैरह खाने को दिया करना। पत्र पहुँचा। बाँचने वाले ने उसे ऐसा ही बाँचा। पर श्लोक में ‘मसिस्पृक्तं’ एक शब्द

१. श्लोक में ‘मसिस्पृक्तं’ शब्द है : उससे ग्रन्थकार का क्या मतलब है यह समझ में नहीं आता। पर वह ऐसी जगह प्रयोग किया गया है कि उसे ‘शालिभक्तं’ का विशेषण न किए गति ही नहीं है। आराधना कथाकोश की छन्दोबन्ध भाषा बनाने वाले पंडित बख्तावरमल उक्त श्लोकों की भाषा यों करते हैं-

“सुत वसुमित्र पढ़ाइयो नित्त, गर्गनाम पाठक जो पवित्र।
 ताको भोजन तंदुल घीव, लिखन हेत मसि देव सदीव॥”

पंडित बख्तावरमलजी ने ‘मसिस्पृक्तं’ शब्द का अर्थ किया है-उपाध्याय को लिखने को स्याही देना। यह उन्होंने कैसे ही किया हो, पर उस शब्द में ऐसी कोई शक्ति नहीं जिससे कि यह अर्थ किया जा सके और यदि ग्रन्थकार का भी इसी अर्थ से मतलब हो तो कहना पड़ेगा कि उनकी रचना शक्ति बड़ी ही शिथिल थी। हमारा यह विश्वास केवल इसी डेढ़ श्लोक से ही ऐसा ही हुआ किन्तु इतने बड़े ग्रन्थ में जगह-जगह, श्लोक-श्लोक में

गर्गोपाध्यायकस्योच्चैर्दीयते भोजनाय च। लेखं संप्रेषयामास भूपश्चेति निजं गृहम् ॥८॥
 विनीतानगरीं प्राप्तः स लेखस्तु प्रमादतः। वाचितो वाचकेनैव महामुग्धेन कर्मतः ॥९॥
 सुतोऽध्यापयितव्योऽसौ तथा गर्गाय धीमते। मसिर्घृतं सुभक्तं च दीयते भोजनक्षणे ॥१०॥
 चूर्णीकृत्य ततोङ्गारं घृतभक्तेन मिश्रितम्। दत्तं तस्मै तर्कैर्मूढैरुपाध्यायाय सेवकैः ॥११॥
 आगतेन ततो राज्ञा समाधानं सुभक्तितः। उपाध्यायश्च पृष्टोऽसौ संजगाविति भो नृप ॥१२॥
 अस्ति मे कुशलं देव भवत्पुण्यप्रसादतः। किन्तु तेऽत्र कुलाचारैर्मसिं भोक्तुं क्षमोऽस्मि न ॥१३॥

है। इसका अर्थ करने में वह गलती कर गया। उसने इसे 'शालिभक्तं' का विशेषण समझ यह अर्थ किया कि घी, दूध और मसि^२ मिले चावल पंडित जी को खाने को देना ऐसा ही हुआ।" ॥७-८॥

स्याही काली होती है और कोयला भी काला, शायद इसी रंग की समानता से ग्रन्थकार ने कोयले की जगह मसि का प्रयोग कर दिया होगा? पर है आश्चर्य! ग्रन्थकार ने इस श्लोक में मसि शब्द को अलग लिखा है, पर ऊपर के श्लोक में आए हुए 'मसिस्पृक्तं' शब्द का ऐसा जुदा अर्थ किसी तरह नहीं किया जा सकता। ग्रन्थकार की कमजोरी की हद है, जो उनकी रचना इतनी शिथिल दीख पड़ती है।

जब बेचारे पंडित जी भोजन करने को बैठते तब चावलों में घी वगैरह के साथ थोड़ा कोयला भी पीसकर मिला दिया जाता था। जब राजा विजय प्राप्त कर लौटे तब उन्होंने पंडित जी से कुशल समाचार उत्तर में पूछा। उत्तर में पंडित जी ने कहा—राजाधिराज, आपके पुण्य प्रसाद से मैं हूँ तो अच्छी तरह, पर खेद है कि आपके कुल परम्परा की रीति के अनुसार मुझसे मसि-कोयला नहीं खाया जा सकता। इसलिए अब क्षमा कर आज्ञा दें तो बड़ी कृपा हो। राजा को पंडित जी की बात का बड़ा अचम्भा हुआ। उनकी समझ में न आया कि बात क्या है। उन्होंने फिर उसका खुलासा पूछा। जब सब बातें उन्हें ज्ञान पड़ी तब उन्होंने रानी से पूछा—मैंने तो अपने पत्र में ऐसी कोई बात न लिखी थी, फिर पंडित जी को ऐसा खाने को दिया जाकर क्यों तंग किया जाता था? रानी ने राजा

ऐसी ही शिथिलता देख पड़ती है। हाँ यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार ने इतना बड़ा ग्रन्थ बना जरूर लिया, पर हमारे विश्वास के अनुसार उन्हें ग्रन्थ की साहित्य सुन्दरता, रचना सुन्दरता आदि बातों में बहुत थोड़ी भी सफलता शायद ही प्राप्त हुई हो! इस विषय का एक पृथक् लेख लिखकर हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करेंगे, जिससे वे हमारे कथन में कितना तथ्य है, इसका ठीक-ठीक पता पा सकेंगे।

२. 'मसि' का अर्थ स्याही प्रसिद्ध है। पं० बख्तावरमलजी ने भी स्याही अर्थ किया है। पर ग्रन्थकार इसका अर्थ करते हैं—'कोयला'।

देखिए—

मसिर्घृतं सुभक्तं च दीयते भोजनक्षणे।

चूर्णीकृत्य ततोङ्गारं घृतभक्तेन मिश्रितम्॥ दत्तं तस्मै इति।

तदा श्रीवसुपालेन पृष्टा राज्ञी च कारणम्। तं लेखं दर्शयामास सा सती गुणमण्डिता ॥१४॥
 ततस्तेन नरेन्द्रेण वाचकस्य महाक्रुधा। मुण्डनादिखरारोहैः कृतो दण्डस्तु कष्टदः ॥१५॥
 एवमन्यैर्न कर्तव्यं साधुभिस्तु प्रमादतः। सदर्थस्याप्यनर्थत्वं सर्वशास्त्रविचक्षणैः ॥१६॥
 तस्माच्छ्रीजिनभाषितं शुभतरं कीर्तिप्रमोदप्रदं ज्ञानं ज्ञानघनैर्विशुद्धचरणैः सद्भिः सदा सेवितम्।
 युक्त्या भक्तिभरेण निर्मलधियो भव्या भजन्त्यत्र ये तेषां सारसुखं प्रबोधविलसच्छ्रीसंभवं संभवेत् ॥१७॥

इतः कथाकोशे अर्थहीनाख्यानं समाप्तम्।

९५. व्यंजनार्थहीनस्याख्यानम्

विशुद्धकेवलज्ञानं नत्वा श्रीमज्जिनेश्वरम्। व्यंजनार्थप्रहीनस्य प्रवक्ष्येहं कथानकम् ॥१॥
 कुरुजांगलसद्वेशे हस्तिनागपुरे परे। महापद्मोभवद्राजा जिनपादाब्जषट्पदः ॥२॥
 तस्य राज्ञी महासाध्वी पद्मश्री रूपशालिनी। श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्म-कर्मसन्दोहभाविनी ॥३॥
 तथा सुरम्यदेशे च पोदनाख्यमहापुरे। सिंहनादो महीनाथ-स्तस्योपरि महाक्रुधा ॥४॥
 स श्रीमांश्च महापद्मः पोदनादिपुरं गतः। तत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां महास्तंभसहस्रकम् ॥५॥

के हाथ में उनका लिखा हुआ पत्र देकर कहा—आपके बाँचने वाले ने हमें यही मतलब समझाया था। इसलिए यह समझकर, कि ऐसा करने से राजा साहब का कोई विशेष मतलब होगा मैंने ऐसी व्यवस्था की थी। सुनकर को बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने पत्र बाँचने वाले को उसी समय देश निकाले की सजा देकर उसे अपने शहर बाहर करवा दिया। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे लिखने-बाँचने में ऐसा प्रमाद का अर्थ कर अनर्थ न करें ॥१-१६॥

यह विचार कर जो पवित्र आचरण के धारी और ज्ञान जिनका धन है ऐसे सत्पुरुष भगवान् के उपदेश किए हुए, पुण्य के कारण और यश तथा आनन्द को देने वाले ज्ञान-सम्यग्ज्ञान के प्राप्त करने का भक्तिपूर्वक यत्न करेंगे वे अनन्तज्ञानरूपी लक्ष्मी का सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे ॥१७॥

९५. व्यंजनहीन अर्थ की कथा

निर्मल केवलज्ञान के धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर व्यंजनहीन अर्थ करने वाले की कथा लिखी जाती है ॥१॥

कुरुजांगल देश की राजधानी हस्तिनापुर के राजा महापद्म थे। ये बड़े धर्मात्मा और जिन भगवान् के सच्चे भक्त थे। इनकी रानी का नाम पद्मश्री था। पद्मश्री सरल स्वभाववाली थी, सुन्दरी थी और कर्मों के नाश करने वाले जिनपूजा, दान, व्रत उपवास आदि पुण्यकर्म निरन्तर किया करती थी। मतलब यह कि जिनधर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी ॥२-३॥

सुरम्य देश के पोदनपुर का राजा सिंहनाद और महापद्म में कई दिनों की शत्रुता चली आ रही थी। इसलिए मौका पाकर महापद्म ने उस पर चढ़ाई कर दी। पोदनपुर में महापद्म ने एक 'सहस्रकूट'